International Journal of Education, Modern Management, Applied Science & Social Science (IJEMMASSS)
ISSN : 2581-9925, Impact Factor: 7.150, Volume 06, No. 03(I), July - September, 2024, pp. 113-116

पर्यावरणवाद पर एक नवीन अध्ययन

डॉ. अमित मेहता*

सार

प्राचीन भारतीय दार्शनिकों को पर्यावरण का अद्भुदत ज्ञान था। यह ज्ञान वेद, पुराण तथा उपनिषदों में पृथ्वी की उत्पति से लेकर पृथ्वी पर होने वाले महाप्रलय तक का वर्णित है। मनुष्य प्राणी जगत में सर्वाधिक विकसित एवं सभ्य प्राणी है। मनुष्य के उद्विकास के साथ–साथ सांस्कृतिक विकास भी हुआ है। मनुष्य अपनी भौतिक आवश्यकताओ की पूर्ति हेतु अपने चारों ओर के पर्यावरण को इच्छानुसार रूपांतरित कर रहा है। भौतिक सम्पन्नता के आधार पर मनुष्य सतत विकसित हुआ है, परन्तु पर्यावरण की दृष्टि से बहुत पिछडता जा रहा है। आधुनिक मनुष्य की असंगतता उसके सामाजिक, पर्यावरणीय अस्तित्व को छिन सकती है। कृषि उपज के लिए वैश्विक मानको को लागू करने से खेती के पारंपरिक तरिकों की भुमिका कम हो गई है। मानव निर्मित समस्याएं जैसे– महामारी, परमाणु हत्यार, ग्लोबल वार्मिंग, प्रदुषण, पीने के पानी की कमी, दुषित भोजन, ओजोन में कमी आदि पृथ्वी अस्तित्व के लिए खतरे को बढा रही है। सैन्यीकरण, औद्योगिकीकरण और पूजीं संकेन्द्रण पर्यावरण दुपयोग के कुछ सबसे गंभीर कारण है। उत्पादो को नियंत्रित कर विकास को पर्यावरण के अर्न्तगत ही करना चाहिए। पर्यावरण संबंधित चिन्ताओ पर चर्चा करने के लिए अनेक सम्मेलन व सम्मितियों का निर्माण किया गया। इनमें पर्यावरण की नैतिकता और स्थिरता से सम्बन्धित चिन्ताओ संबोधित करते है, और नैतिक मुद्दो को उजागर किया जाता है। एक वैश्विक शिखर सम्मेलन द्वारा किये गये निर्णय गैर भागीदार व भागीदार राष्ट्र के लिए अनिवार्य होने चाहिए। ये पर्यावरण संबंधित चिन्ताओ की सीमाओ के पार वैश्विक संरक्षण की प्रेरणा देते है। वर्तमान परिपेक्ष में जीव समुदाय का प्रबन्धन, वन संरक्षण, जल संरक्षण व मृदा संरक्षण किया जाना अत्यन्त आवश्यक है। ब्रह्माण्ड की अखण्डता को बनाये रखने के लिए मानव का जागरूक होना आवश्यक है।

शब्दकोश: *पर्यावरण, महामारी, ग्लोबल वार्मिंग, औद्योगिकीकरण, सतत विकास, जीव समुदाय का प्रबन्धन, वन संरक्षण, जल संरक्षण व मृदा संरक्षण।*

प्रस्तावना

पर्यावरण एक स्वयं एक जटिल तंत्र है जो जैविक व अजैविक घटको से मिलकर बना हुआ है। पर्यावरण में प्रत्येक घटक एक दुसरे को प्रभावित करता है, किसी भी घटक को एक दुसरे से प्रभावित किये बिना अलग नहीं कर सकते है। प्रागैतिहासिक काल में मनुष्य भोजन, आवास, सुरक्षा आदि के कारण प्रतिस्पर्धात्मक वातावरण में रहता था। इसी काल के दौरान अग्नि, पहिये, तीर–कमान आदि का अविष्कार किया गया था। यहां से ही जैविक व अजैविक कारको के मध्य पारस्परिक सम्बन्ध हो गया जो पारिस्थितकी का मूल आधार है। प्राचीन भारतीय दार्शनिकों को पर्यावरण का अद्भुदत ज्ञान था। यह ज्ञान वेद, पुराण तथा उपनिषदों में पृथ्वी की उत्पति से लेकर पृथ्वी पर होने वाले महाप्रलय तक का वर्णित है। हमारे दो महाकाव्य रामायण और महाभारत में कई स्थानों पर पर्यावरणीय चेतना के बारे में उल्लेख मिलता है। मनुष्य के उद्विकास के साथ–साथ सांस्कृतिक विकास भी हुआ है। सांस्कृतिक विकास के दौरान मनुष्य की पर्यावरण पर निर्भरता अन्य प्राणियों की तुलना में तेजी बढी। पर्यावरण अपने आप में व्यापक है, जबकि मनुष्य पृथ्वी पर एक प्रजाति के रूप में है जो जीवित रहने के लिए पर्यावरण पर निर्भर है।[1] मनुष्य प्राणी जगत में सर्वाधिक विकसित एवं सभ्य प्राणी है। मनुष्य अपनी

* सह आचार्य, इतिहास, राजकीय कला महाविद्यालय, सीकर, राजस्थान।

भौतिक आवश्यकताओ की पूर्ति हेतु अपने चारों ओर के पर्यावरण को इच्छानुसार रूपांतरित कर रहा है। मनुष्य द्वारा औद्योगिकरण, कृषि, भाहरीकरण, खनन एवं विभिन्न तकनीकियों के कारण पर्यावरण में परिवर्तन हुए है। भौतिक सम्पन्नता के आधार पर मनुष्य सतत विकसित हुआ है, परन्तु पर्यावरण की दृष्टि से बहुत पिछडता जा रहा है। त्वरित औद्योगिकरण और नवोन्वेषी अन्वेषण जैसे वैश्विक परिवर्तन मनुष्य को अपने ऊपर गर्व कराते है, परन्तु ये उपलब्धियां तब चिंता का विषय बन जाती है जब ये नियंत्रित स्तर से आगे निकल जाती है और जनसंख्या वृद्धि, कुपोषण, प्राकृतिक संसाधनो में कमी, पर्यावरण में गिरावट आदि का कारण बन जाती है। औद्योगिकरण, कृषि, भाहरीकरण, खनन एवं विभिन्न तकनीकियों के कारण अनेक पादप व प्राणी विलुप्त हो रहे है जिससे पारिस्थितिकीय साम्य पूर्णत गडबडा गया है। आर्थिक नीतियो से होने वाले विकास का प्रभाव जीवन के आधार वायु, जल, जमीन व जंगल पर पडा है। मनुष्य विकास के नाम पर पर्यावरण का विनाश कर रहा है। एल्डो लियोपोड की ''लैण्ड एथिक'' को प्रायः पर्यावरण नैतिकता पर पहली पुस्तक माना जाता है। वे कहते है कि कोई कार्य तब तक सही होता है, जब तक जीवित समुदाय की अखण्डता, स्थिरता और सुन्दरता को बनाये रखने की कोशिश करता है और तब गलत होता है जब वह अन्यथा करता है।[2]

मानव निर्मित पर्यावरणीय समस्याएं

मैथियास फिंगर ने मनुष्य का अपने पर्यावरण के प्रति आत्म लगाव को "असंतोष" के रूप में वर्णित किया है। और मनुष्य ने वर्तमान में समाज को उनके जैव भौतिक व सांस्कृतिक वातावरण से अलग करने में सक्रिय रूप से योगदान दिया है।[3] आधुनिक मनुष्य की असंगतता उसके सामाजिक, पर्यावरणीय अस्तित्व को छिन सकती है। सांस्कृतिक दृष्टिकोण से, वैश्विकरण एकल संस्कृति का स्थायित्व है। एकल संस्कृति का अधिपत्य और विदेशी संस्कृति के साथ समझोता भारत सहित दुनिया के देशो में वैश्विकरण की पहचान है। जब गाडगिल ने इलायची के बागानो में जैव उर्वरक की सलाह दी, तब किसानों ने विरोध किया और कहा कि यह लाभदायक नही है। इसका मतलब लोग बाजार उन्मुख उत्पाद देखना चाहते है। कृषि उपज के लिए वैश्विक मानको को लागू करने से खेती के पारंपरिक तरिकों का भुमिका कम हो गई है। अधिक उत्पादन हेतु रासायनिक खाद, संश्लेषित बीज, कीटनाशक आदि के उपयोग से पर्यावरण बिगडता जा रहा है। जी वुल्फ "वस्तुकरण" के बारे में कहते है कि यह एक प्रक्रिया है जो किसी वस्तु या सेवा को पहले गैर–बाजार सामाजिक नियमों के अधीन एक ऐसी वस्तु या सेवा को परिवर्तित किया जाता है जो मुख्य रूप से बाजार नियमों के अधीन होती है।[4] वास्तव में हम बाजार नियमों के अनुरूप उत्पादो को देख रहे है। अनेक सिंद्धान्तों ने इस धारणा को स्पष्ट किया है कि व्यक्ति सैद्धान्तिक रूप से प्राकृतिक वस्तुओ के लिए धन का व्यापार करने को तैयार है। ऐसे सिंद्धान्तों में बाजार या उपभोक्ता मनुष्य को प्राकृतिक वस्तुओ को पैसो के बदले में रखने को प्रेरित किया जाता है। इससे प्राकृतिक वस्तुओ को कई रूपो में पराक्रम्य स्थिति प्राप्त होती है।[5] सतत विकास हमेशा अर्न्तनिहीत विरोधाभास को दर्शाता है। उपभोक्तावाद और वैश्विक मानको के अनुरूप मानव व्यक्तित्व का विकास पर्यावरण के प्रति लोकप्रिय भावनाओं के विस्तार को दर्शाता है।[6] मानव निर्मित समस्याएं जैसे– महामारी, परमाणु हत्यार, ग्लोबल वार्मिंग, प्रदुषण, पीने के पानी की कमी, दुषित भोजन, ओजोन में कमी आदि पृथ्वी अस्तित्व के लिए खतरे को व्यक्त करती है। सैन्यीकरण, औद्योगिकीकरण और पूजीं संकेन्द्रण पर्यावरण दुपयोग के कुछ सबसे गंभीर कारण है और पृथ्वी द्वारा साझा की जाने वाली सुक्ष्म संरचनाओं और सुक्ष्म गतिविधियों को दर्शाते है।[7] पर्यावरणीय समस्या में व्यापक परिवर्तन, जैव विविधता तथा दीर्घकालीन पर्यावरण अधिक महत्वपूर्ण है। वातावरण में विश्वव्यापी परिवर्तन से विभिन्न प्रजातियो की बहुलता, संख्या एवं वितरण प्रभावित हो रहा है। जैव विविधता नष्ट होने से जैव समुंदाय का स्थायित्व तथा जीव समष्टी जिस पर हमारा आर्थिक विकास निर्भर है, खतरे में है। पृथ्वी के इन संसाधनो का तेजी से हास के कारण प्राकृतिक एवं प्रबंधित पारितन्त्र पूर्ण रूप से प्रभावित हो रहा है। वैश्विककरण और पर्यावरण मध्य में असंगतता से वर्तमान जलवायु परिवर्तन ग्लोबल वार्मिंग के रूप में स्पष्ट है।[8] मैथ्यू हम्रे ने पर्यावरण पर मंडरा रहे खतरे की प्रकृति को समझाने के लिए 'पारिस्थितकी परलोकवाद' वाक्यांश क उपयोग किया। तथा कहा है कि नागरिको से ऐसे नए कानूनों के लिए मतदान करने की अपेक्षा नही की जा सकती जो दीर्घकालीन पर्यावरणीय स्थिरता के नाम पर उनकी स्वतंत्रता को कम कर दे।[9]

पर्यावरणीय विकास हेतु रणनीतियां

पर्यावरण संबंधित चिन्ताओ पर चर्चा करने 1992 में संयुक्त राष्ट्र रूपरेखा सम्मेलन (न्छब्ब्) की स्थापना की थी। इसे "जलवायु प्रणाली में खतरनाक मानवीय हस्तक्षेप" से निपटने के लिए पर्यावरण संधि के रूप में किया गया था। इसे पृथ्वी शिखर सम्मेलन या रियो शिखर सम्मेलन के नाम से जाना जाता है। रियो में जलवायु परिवर्तन पर सम्मेलन और जैव विविधता पर सम्मेलन की घोषणाओ के नैतिक आयामों में समाज की नव उदारवादी मांगों के अनुरूप अनेक बदलाव हो रहे है। इस प्रकार सतत विकास के लिए एक रोल मॉडल प्रकृति के मितव्ययीकरण के रूप में बनाया गया था।[10] शिखर सम्मेलन में पर्यावरण की नैतिकता और स्थिरता से सम्बन्धित चिन्ताओ विचार विमर्श और नैतिक मुद्दो को उजागर किया जाता है। यह एक विरोधाभास बिन्दु है जहां पर्यावरणीय नैतिकता सामाजिक नैतिकता के साथ मिलती है। पर्यावरण की नैतिकता, हितधारक और स्थिरता जैसी अवधारणाएं इसके बाजार या पूंजी आधारित उपयोग से की जाती है। इन धारणाओ का उपयोग ओद्यौगिक और गैर ओद्यौगिक देशो द्वारा पर्यावरण समर्थक कानुनो को लागु करने के साथ–साथ इनका कियावन्यन करना भी आवश्यक है। कार्ल डेथ ने शिखर सम्मेलन के सम्बन्ध में "सतत विकास" भाब्द की एक सत्तामूलक गतिशीलता स्थापित करने के लिए फौकॉल्डियन परिपेक्ष्य का उपयोग किया है। अर्थात् सतत विकास का उपयोग अकसर एक अप्रिय वास्तविकता को छिपाने के लिए किया जाता है।[11] एक वैश्विक शिखर सम्मेलन द्वारा किये गये निर्णय गैर भागीदार व भागीदार राष्ट्र के लिए अनिवार्य होने चाहिए। ये पर्यावरण संबंधित चिन्ताओ की सीमाओ के पार वैश्विक संरक्षण की प्रेरणा देते है। पर्यावरण के क्षेत्र में अनेक राजकीय तथा अराजकीय संगठन जैसेः– ब्ज्मैए प्न्छछए न्छम्च्ए न्छमैब्व्ए ६।त्ए ।।त् कार्य कर रहे है। पर्यावरण संबंधित विकास के विचार में पहला संदर्भ विश्व संरक्षण नीति में था, जिसे 1980 में प्न्छछए न्छम्च्ए ॅ॥ द्वारा प्रकाशित किया गया था। इस रिपोर्ट में विकास को "मानव आवश्यकताओ को पूरा करने और मानव जीवन की गुणवता में सुधार करने के लिए जीवमंडल के संशोधन और मानव वित्तिय, सजीव और निर्जिव संसाधनों के अनुप्रयोग" के रूप में परिभाषित किया गया है। विकास को स्थायी बनाने के लिए इसमें सजीव व निर्जिव संसाधनों के आधार के साथ–साथ सामाजिक, आर्थिक और पारिस्थितिक कारकों और वैकल्पिक कार्यो के दीर्घकालीन व अल्पकालीन लाभ व हानि को ध्यान में रखना चाहिए।[12] विश्व संरक्षण नीति (ॅबे) का दृष्टिकोण पर्यावरण के प्रति सम्मान और संसाधनो का संरक्षण था। पर्यावरण और विकास पर 22 सदस्यीय विश्व ब्रंटलैण्ड आयोग 1984 में गठित किया गया था । इस आयोग ने "हमारा साझा भविष्य" के नाम की रिपोर्ट प्रस्तुत जिसमें लोगो की मांगों और प्रकृति की मांगों के बीच "सामंजस्य" की आवश्यकता को स्पष्ट रूप से समझाया गया था।[13] रिपोर्ट में "सामंजस्य" भाब्द का उपयोग कई स्थानो पर किया गया है जहां पृथ्वी के साथ साथ सजीव व निर्जिव संसाधनो की सुरक्षा के लिए स्वैच्छिक प्रयासो की आवश्यकता होती है।

भौतिक विकास का सीमांकन

गैर मानवीय व जैव जगत का सम्मान ही पर्यावरण की सुरक्षा का समाधान है। उत्पादो को नियंत्रित कर मानवीय विकास को पर्यावरण के अर्न्तगत ही करना चाहिए। जैसा कि विकास मनोवैज्ञानिक कहते है कि विकास के उस स्तर तक पहुचने की जरूरत है जहां दुनिया "केवल वही बच्चे पैदा कर रही है जिन्हे उनके माता पिता सकिय रूप से चाहते है।"[14] डॉबसन यहां व्यापक रूप से उनका उद्धारण देते है जो "विकास सीमा" में सहायक है। विकास के लिए नैतिक विविधताए, उपलब्धियों के अलग अलग मानक, विश्व में रहने वाले लोगो की सांस्कृतिक विशिष्टता आदि विभिन्न क्षेत्रो में विकास को परिभाषित करने और निर्णय लेने में सार्वभौमिक रूप प्रदान करती है।[5] अर्थात पर्यावरणीय विकास पर विचारों अंतर–व्यक्ति परक और अंतर–सांस्कृतिक पर किया जाना चाहिए। श्मेलेव ने एक "बहु मानदण्ड विधि" का सुझाव दिया गया है जिसमें पर्यावरणीय समस्याओं का अध्यन करना जो स्थिरता की दिशा में विकास पैटर्न में स्थानीय, क्षेत्रिय और कॉपरेट नैतिकता का सम्नवय कर सके।[15] पर्यावरण के लिए सभ्य सहमति की आवश्यकता है। यहां "सभ्य सहमति" का उपयोग इस पृथ्वी की

व्यापक लेकिन भविष्यवादी और समग्र मांग को समझने व स्वीकार करने के लिए सभ्य लोगो की भूमिका निभाने के लिए किया जाता है, जिसका हम मृत्यु तक सहारा लेते है, कभी–कभी मृत्यु के बाद भी।(16)

निष्कर्ष

पुरातन काल में मानव का स्वरूप मूलभूत रूप से भौतिक मानव के रूप में था, ज्यों–ज्यों मानव में सांस्कृतिक विकास होता गया, औद्योगिकरण बढता गया, मानव का रूपांतरण सामाजिक मानव, आर्थिक मानव, औद्योगिक मानव तथा साइबर मानव में हो गया। और मानव एक मशीन जैसा प्राणी बन गया जिसने स्वार्थ से प्रेरित होकर हमेशा प्रकृति पर प्रभुत्व हासिल करने का प्रयास किया है। आधुनिक मानव समाज द्वारा प्राकृतिक संसाधनों का अविवेकपुर्ण उपयोग किया जा रहा है, जिसके परिणामस्वरूप मानव आज अपने अस्तितत्व के लिए खतरा महसुस कर रहा है। वर्तमान परिपेक्ष में जीव समुदाय का प्रबन्धन, वन संरक्षण, जल संरक्षण व मृदा संरक्षण किया जाना अत्यन्त आवश्यक है। यदि समय रहते सचेत नही हुए और दीर्घकालीन पर्यावरण संतुलन की सम्भावनाएं एवं रणनीति नही अपनाई गई तो मनुष्य विलुप्ति के कागार पर जल्द खडा होगा। सुदृढ भविष्य के विकास के लिए विकसित देशो में पर्यावरण रणनीतियो में विकास का समावेश आवश्यक है। ब्रह्माण्ड की अखण्डता को बनाये रखने के लिए मानव का जागरूक होना आवश्यक है। जब तक लोग पर्यावरण पर मंडरा रहे खतरे के प्रति उन्मुख नही होगे, तब तक सतत विकास को प्राप्त करना दूर का सपना होगा।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. आर्गिरो वासोस– पर्यावरणवाद, मानवविज्ञान, पारिस्थितिकी और उत्तर औपनिवेशिकता का तर्क, न्यूयॉक 2005
2. बैनन ब्रायन ई.– आंतरिक मूल्यो से करुणा तकः एक स्थान आधारित नैतिकता, पर्यावरणीय नैतिकता, 35(3): 259
3. फिंगर मैथियास– 2008 सतत विकास के लिए कौन या भाासन ? न्यूयॉक 2008 पृ.स. 34–57
4. जी. वुल्फ– वैश्विकरण और पानी के निजीकरण्र के लाभ व हानिः टोक्यो 2005, पृ.स. 49–55
5. गेट्जनर– पर्यावरण मुल्यांकन दृष्टिकोण का विस्तार/प्रकृति को महत्व देने की एक रूपरेखा, पर्यावरण मुल्यांकन में विकल्प, न्यूयॉक 2008 पृ.स. 22–24
6. इवेनऑफ रिचर्ड– जैव क्षेत्रवाद और वैश्विक नैतिकता पारिस्थितिक स्थिरता, सामाजिक न्याय और मानव कल्याण को प्राप्त करने के लिए एक लेन–देन सम्बन्धी दृष्टिकोण, न्यूयॉक, 2011
7. लेफेरियर एरिक– पर्यावरणवाद और वैश्विक विभाजन, न्यूयॉक 2006, पृ.स.97–98
8. आलम, भौकत, नताली व ओवरलैण्ड– वैश्विक, सामाजिक और पर्यावरणीय न्याय की खोज मेंः एक विकसित विश्व व्यवस्था में अंतर्राष्ट्रीय कानून की प्रासांगिकता, 2011
9. मैथ्यू हम्प्रे– पारिस्थितिक राजनीति और लोकतांत्रिक सिंद्धातः विचारशील आर्दश को चुनौती, न्यूयॉक, पृ.स.13
10. ब्रांड उलरिच और क्रिस्टोफ गोर्ग– स्थिरता और वैश्विकरणः एक सैद्धांतिक परिपेक्ष, 2008, पृ.स. 14–33
11. डेथ कॉल– विश्व शिखर सम्मेलन में सतत विकास भागीदारी विरोध व भाक्ति को नियंत्रित करना, न्यूयॉक, 2010, पृ.स.13
12. प्न्ब्छ– विश्व संरक्षण रणनीतिः सतत विकास के लिए जीवित संसाधन संरक्षण, 1980, पृ.स.1,3
13. पैटन जी जे, हमारा साझा भविष्य–1987, पर्यावरण और विकास पर विश्व आयोग की रिपोर्ट, संयुक्त राष्ट्र संघ, 2011
14. डॉबसन एन्ड्रयू– ग्रीन पॉलटिकल थॉट, न्यूयॉक, 2007
15. श्मेलेव एस ई– पारिस्थितिकीय अर्थशास्त्रः व्यवहार में स्थिरता, लन्दनः स्प्रिंगर सांइस व बिजनेस मीडिया, 2012
16. क्नैप, जी ए बर्ट– अनिश्चितता की परिस्थितियो में भाहरी नेटवर्क विकासः न्यूयॉक 2008, पृ.स.85

❖◆❖